

# दैनिक भास्कर

**Date: 18-05-17**

## देश को तीन टाइम जोन में बांट देना चाहिए



बहुत पहले 1974 में कॉलेज के किशोर के रूप में मैंने असम के जोरहाट में स्थित सहपाठी के पिता के चाय के बागान में गर्मियों की छुट्टियां बिताई थीं। उस रमणीय अवकाश के दौरान मैंने जिन शुरुआती चीजों का पता लगाया था उनमें एक अपनी घड़ी को 'टी-टाइम' के मुताबिक सेट करना भी था। यह चाय बागान के प्लांटों की काल्पनिक घड़ी का वक्त था, जो मेरी घड़ी के वक्त से दो घंटे आगे था।

मेरे दोस्त के पिताजी ने समझाया कि जहां सूरज सुबह 4 बजे उगता हो और 3:30 बजे डूबता हो वहां इंडियन स्टैंडर्ड टाइम का कोई अर्थ नहीं। यदि प्लांट अपनी घड़ी में वही वक्त रखे जैसा दिल्ली के लोग रखते हैं तो सब

गड़बड़ हो जाए। स्कूल में राष्ट्रवादी भावनाओं का इतना ज्ञान दिया गया था कि मुझे अस्पष्ट-सी ठेस पहुंची। शेष देश की तरह उसी टाइम जोन में न रहना मुझे भारतीयता से कुछ धोखे की तरह लगा। फिर भी कुछ ही दिनों में मुझे महसूस हो गया कि इसमें बहुत व्यावहारिकता है, क्योंकि ऐसे भ्रम को दूर करने का और कोई तरीका नहीं है कि आप सूरज उगने के बहुत देर बाद उठें और आपकी घड़ी आधी रात बताए। उसके तत्काल बाद मैं ग्रेजुएशन के लिए अमेरिका गया, जहां व्यक्ति जल्दी ही चार टाइम जोन से तालमेल बैठा लेता है। जहां मैं पढ़ रहा था उन न्यूयॉर्क और बोस्टन जैसी जगहों के लिए ईस्ट टाइम जोन और माउंटेन और प्रशांत सागरीय (कैलिफोर्निया को घेरता हुआ) सेंट्रल टाइम जोन था और हर अगला टाइम जोन दूसरे से एक घंटे आगे था। इसलिए जब देश की राजधानी वाशिंगटन डीसी में सुबह के नौ बज रहे होते तो प्रशांत महासागरीय टाइम जोन के वाशिंगटन राज्य में सुबह के छह बज रहे होते।

इससे कुछ अजीब-सी स्थिति बनती जैसे जब 1976 के राष्ट्रपति चुनाव में न्यूयॉर्क में मतदान के बाद टेलीविजन पर एग्जिट पोल के नतीजे बताए जाते तो लॉस एंजेलिस में मतदान भी खत्म नहीं हुआ होता था। बाद में एग्जिट पोल पर इस आशंका से रोक लगा दी गई कि एक राज्य के नतीजे का दूसरे राज्य के मतदान पर असर हो सकता है। लेकिन, एक ऐसे देश में मानव के दिन व रात के समय चक्र का तालमेल बैठाने का यह एकमात्र तरीका था, जो कई डिग्री देशांतर रेखाओं में फैला है (वास्तव में बहुत दूर के अलास्का और हवाई जैसे राज्यों के समय से तालमेल बैठाने के लिए वहां दो और टाइम जोन हैं) अमेरिका ने गर्मियों में डे-लाइट सेविंग्स टाइम भी अपनाया है जिसके तहत हर कोई वसंत के दिनों में अपनी घड़ी को एक घंटा जल्दी सेट कर लेता है ताकि लंबे दिनों में सूरज की रोशनी का अधिक फायदा लिया जा सके लेकिन, पतझड़ में उसे फिर पुराने समय पर ले आते हैं, जिसे अमेरिकी फॉल कहते हैं। इस परम्परा को याद रखने के लिए हमें 'स्प्रिंग फॉरवर्ड, फॉल बैक' का जुमला सिखाया गया था। जल्द ही मुझे यह भी पता चल गया कि दुनिया में हर कहीं समय को किसी कठोर नियम के तहत नहीं बल्कि लोगों की सुविधा के अनुसार तय किया जाता है। पश्चिमी गोलार्ध में गर्मी के दिनों में सूर्य जल्दी उगता है और देर से डूबता है। इस तरह समय बदलने से लोगों को सूरज की रोशनी का फायदा मिल जाता है, जिससे बिजली का खर्च बच जाता है, क्योंकि सामान्य कामकाज के घंटों में बिजली की

रोशनी जरूरी नहीं होगी। जब मैं जेनेवा में काम करता था तो स्विट्जरलैंड में बहस हुई कि हर गर्मियों में देश शेष यूरोप से कट जाता है, क्योंकि इस दूध व चीज उत्पादक देश में अत्यधिक ताकतवर स्विस् किसान अपनी घड़ी का वक्त बदलने से इनकार करते हैं। वे कहते हैं कि इससे उनकी गायें भ्रम में पड़ जाएंगी, क्योंकि साल के पांच महीने उनका दूध एक घंटे जल्दी निकाला जाएगा। आखिरकार बिज़नेस के लोगों और सरकारी अधिकारियों ने कुंठित होकर अड़ियल दूध उत्पादकों पर दबाव डाला और हर गर्मी में डे लाइट सेविंग अपनाना शुरू किया। मुझे लगता है कि अब वे किसान जल्दी उठते होंगे या जोरहाट के प्लांटों की तरह उन्होंने 'काउ टाइम' बना लिया होगा। सवाल यह है कि भारत ऐसा क्यों नहीं कर सकता? हमारे यहां तो जैसलमेर से जोरहाट और उसके आगे भी एक ही समय है यूटीसी (पुराना जीएमटी) से साढ़े पांच घंटे अधिक, जबकि देश करीब 30 डिग्री देशांतर में फैला है (68 डिग्री 7 अंश से 97 डिग्री 25 अंश पूर्व) और सामान्य नियम है कि हर 15 डिग्री के फर्क पर एक घंटे के अंतर से नया टाइम जोन। व्यावहारिक धरातल पर इसका कोई अर्थ नहीं है कि लक्षद्वीप के लोग ऐसी घड़ी के अनुसार जागें, जो लखनऊ का वक्त बताती हो अथवा असम या अंडमान के लोग आगरा के लोगों के समय के मुताबिक चलें। समय के फर्क का जीवनशैली की आदतें और ऊर्जा की खपत जैसे विविध क्षेत्रों में नकारात्मक असर होता है। कहा जाता है कि पूर्वोत्तर के क्षेत्र अच्छे क्रिकेटर पैदा नहीं करते, क्योंकि उनके पास अभ्यास के लिए पश्चिमी हिस्से के लोगों की तुलना में सूरज की रोशनी वाले कम घंटे होते हैं। किसी वक्त पृथक्तावादी प्रवृत्तियों को देखते हुए एक टाइम जोन का विचार राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करने के लिए अपनाया गया था। हमारी आज़ादी नई थी और इसलिए एकता को बढ़ावा देने वाले हर नियम को बिना आलोचना के स्वीकार कर लिया गया। आज हमारी राष्ट्रीयता सुरक्षित है और अब हमें एकजुटता के अहसास के लिए एक जैसे वक्त की जरूरत नहीं है। एक समझदारी भरा सिस्टम भारत को तीन टाइम जोन देगा : लक्षद्वीप, मुंबई और पंजाब जैसी जगहों के लिए यूटीसी प्लस पांच घंटे, दिल्ली से चेन्नई तक अभी जैसा यूटीसी प्लस साढ़े पांच और अंडमान सहित कोलकाता से म्यांमार की सीमा तक यूटीसी प्लस छह घंटे।

फायदे के बारे में सोचिए: कार्यक्षमता बढ़ जाएगी, बिजली की बचत होगी, नौकरशाही की कठोरता घट जाएगी और अरुणाचल व मणिपुर के युवाओं को भी इतना वक्त मिलेगा कि वे बेहतर क्रिकेटर बन सकें। सिर्फ ये फायदे ही नए टाइम जोन अपनाने पर होने वाली शुरुआती दिक्कतों को सार्थक बना देंगे। सबसे मजबूत दलील : एक ही ऐसा देश है जहां बिना किसी तर्क के एक ही टाइम जोन है और वह विशाल भूभाग पर एकरूपता पर जोर देने वाला कम्युनिस्ट चीन। लोकतांत्रिक भारत को ऐसा सिद्धांत क्यों अपनाना चाहिए? यह अक्षरशः बदलाव का वक्त है। (ये लेखक के अपने विचार हैं।)

**शशि थरूर, विदेश मामलों की संसदीय समिति के चेयरमैन और पूर्व केंद्रीय मंत्री**

**Date: 18-05-17**

## रूस पर भारत की परमाणु कूटनीति का दबाव

भारत ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और रूसी राष्ट्रपति ब्लादीमीर पुतिन की अगले महीने होने वाली मुलाकात से पहले रूस पर परमाणु कूटनीति का कड़ा दबाव बनाकर यह जता दिया है कि जब दुश्मनों पर दबाव डालने से काम न बने तो दोस्तों से नाराजगी जताने का तरीका भी अपनाया जाना चाहिए। भारत के इस रुख ने चीन से नज़दीकी बढ़ा रहे रूस के भीतर बेचैनी पैदा कर दी है और संभव है कि वह भारत के पक्ष में कुछ सक्रियता दिखाए। रूस को उम्मीद थी कि भारत पुतिन और मोदी की मुलाकात से पहले कुडनकुलम में एटमी रिएक्टर विकसित करने संबंधी सहमति पत्र (एमओयू) पर रूस के साथ समझौता कर लेगा लेकिन, भारत ने कह दिया है कि अगर उसे डेढ़ दो साल में परमाणु आपूर्ति समूह (एनएसजी) का सदस्य नहीं बनाया जाता तो उसके पास अपना रिएक्टर विकसित करने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचेगा। रूस इस

समझौते के लिए बहुत बेचैन है, क्योंकि इससे उसे व्यापारिक लाभ होगा। इस सिलसिले में रूस के उप प्रधानमंत्री डिमित्री रोगाजिन ने मोदी से मुलाकात भी की है लेकिन, कोई बात बनती नहीं दिखी। भारत को परमाणु ऊर्जा से बड़ी उम्मीदें रही हैं और सरकार का दावा है कि वह 2024 तक परमाणु ऊर्जा का उत्पादन 15000 मेगावाट तक पहुंचा देगा जो कि पिछले दशक के उत्पादन का तीन गुना होगा। रूस पर भारत के दबाव डालने की एक वजह चीन की वन बेल्ट वन रोड(ओबीओआर) योजना में रूस का चीन के करीब जाना है। इस बीच उसने पाकिस्तान से सामरिक करीबी भी कायम की है। ये दोनों कदम भारत के हितों के विरुद्ध हैं। इसके बावजूद रूस जैसा पुराना मित्र जो ब्रिक्स का सदस्य भी है वह भारत के लिए उपयोगी हो सकता है अगर परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में चीन पर दबाव बनाकर भारत को एनएसजी में शामिल करा सके। भारत ऐसी शर्त अमेरिका और फ्रांस से भी रख सकता है लेकिन, शायद वे उतने पुराने मित्र नहीं हैं जितना रूस, इसलिए उनसे वह उतनी उम्मीद नहीं कर सकता जितनी रूस से। आज के अंतरराष्ट्रीय संबंध व्यावसायिकता से शुरू होकर सामरिकता की ओर जाने वाले हो गए हैं और भारत आर्थिक संकट से गुजर रहे रूस के लिए अपार व्यापारिक संभावनाएं रखता है। अब देखना है कि इस दबाव का रूस पर कितना असर पड़ता है और वह चीन को भारत के पक्ष में व्यावहारिक रास्ता अपनाने के लिए कितना मजबूर करता है।

## बिज़नेस स्टैंडर्ड

*Date: 18-05-17*

### जैव प्रौद्योगिकी नियामक



जेनेटिक इंजीनियरिंग आकलन समिति (जीईएसी) की ओर से जीन संवर्धित (जीएम) सरसों, डीएमएच-11 की वाणिज्यिक उपज को मंजूरी मिलने के साथ ही भारत जीएम फसलें उगाने वाले 25 देशों में शुमार होने के करीब पहुंच गया है। हालांकि दिल्ली विश्वविद्यालय के सेंटर फॉर जेनेटिक मैनिपुलेशन ऑफ क्रॉप प्लांट्स द्वारा विकसित जीएम सरसों को किसानों तक पहुंचाने के पहले कई बाधाएं दूर करने की आवश्यकता है। इनमें से एक है जीएम फसलों के विरोधियों की तरफ से कड़ा विरोध। इसमें सत्ताधारी भाजपा और उसके सहयोगियों से जुड़ा स्वदेशी जागरण मंच भी शामिल है। याद रखिए कि जीएम विरोधी लॉबी के चलते ही 2010 में तत्कालीन पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश को बीटी बैगन पर रोक लगानी पड़ी थी जबकि जीईएसी उसे मंजूरी दे चुकी थी। इसके अलावा

सरकार को सर्वोच्च न्यायालय जाकर जेनेटिक बदलाव वाली फसलों की खेती पर लगी रोक हटवानी पड़ेगी। इतना ही नहीं कुछ राज्यों में जहां जीएम फसलों के परीक्षण तक को मंजूरी नहीं है, उनके मन में इन फसलों को लेकर जो पूर्वग्रह हैं उन्हें दूर करना होगा। चूंकि मोदी सरकार ने किसानों की आय बढ़ाने के लिए कृषि में विज्ञान संबंधी विकास के प्रति झुकाव दिखाया है इसलिए उम्मीद है कि पर्यावरण मंत्री अनिल माधव दवे यह सुनिश्चित करेंगे कि जीन में बदलाव वाली सरसों रबी के अगले मौसम में खेतों में दस्तक दे दे। इसके अलावा 100 से अधिक जीएम फसलों का भविष्य दांव पर लगा है। इनमें मुख्य अनाज, फल, सब्जियां और वाणिज्यिक फसलें शामिल हैं। इन सभी का विकास अलग-अलग चरण में है। कुछ जीएम फसलों के डेवलपर डीएमएच-11 पर निगाहें जमाए हैं। इसकी परिणति देखकर ही वे अपने उत्पादों को जीईएसी के समक्ष पेश करेंगे। यहां ध्यान देने लायक बात यह है कि इनमें से कई गैर हाइब्रिड जीएम फसलों की किस्म हैं जिनके बीज किसानों द्वारा बार-बार इस्तेमाल किए जा सकते हैं। जबकि हाइब्रिड फसलों के बीज हर बार नए खरीदने होते हैं। इनमें तीन स्थानीय तौर पर विकसित बीटी-कॉटन की किस्में भी हैं जिनके वाणिज्यिक प्रसार की अनुशंसा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) कर चुकी है। ऐसी किस्मों को

मिलने वाली मंजूरी से जीएम बीज के क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कंपनी मोनसैंटो का एकाधिकार समाप्त हो जाएगा। फिलहाल अधिकांश बीटी कॉटन उत्पादक पेटेंट के जरिये संरक्षित बीजों का इस्तेमाल करते हैं जिन्हें यही कंपनी बनाती है। इस बात की सराहना की जानी चाहिए कि पर्यावरण मंत्रालय और जीईएसी दोनों ने जीएम सरसों के मामले पर सावधानी से काम लिया है कि कहीं उन पर अपारदर्शिता बरतने का आरोप न लग जाए। मंत्रालय ने अपनी वेबसाइट पर इसकी जांच और परीक्षण से संबंधित तमाम जानकारी डाली है। इसमें खाद्य एवं पर्यावरण सुरक्षा रिपोर्ट का आकलन भी शामिल है। जानकारी के मुताबिक जीईएसी ने इस पर आई 700 से अधिक प्रतिक्रियाओं पर भी ध्यान दिया है। इसके अलावा उसने तमाम जीएम विरोधी संगठनों की बात भी सुनी है। इन बातों के बाद ही उसने इसे बाजार में उतारने की सहमति दी है। अगर जीएम फसलों का विरोध करने वाले अभी भी इस निर्णय का विरोध करना चाहते हैं तो वे किसानों को ही नुकसान पहुंचाएंगे। चाहे जो भी हो सच यही है कि मौजूदा जैव प्रौद्योगिकी नियामक ढांचे में अंतिम निर्णय राजनेताओं (पर्यावरण मंत्री) का ही होता है। यह अपने आप में काफी कुछ कहता है। इसकी जगह एक मजबूत, वैज्ञानिक क्षमता संपन्न और पर्याप्त अधिकार वाला जैव प्रौद्योगिकी नियामक होना चाहिए जो गैर विज्ञान क्षेत्र से प्रभावित न हो। जब तक ऐसी व्यवस्था कायम नहीं होती है तब तक आम जनता और जीएम उत्पादों के विरोधियों को समझाना मुश्किल है। ऐसा करके ही इन फसलों के प्रति उनका वैमनस्य समाप्त किया जा सकता है।



**Date: 18-05-17**

## After the no-show

### ***Refusal to engage cannot be long-term policy. India must frame a response to China's Belt and Road initiative***

It's a pity that India's common interest with China on connecting the shared neighbourhood has not translated into Delhi's support for Beijing's ambitious Belt and Road Initiative. Delhi's decision to turn its back on this week's Belt and Road Forum in Beijing underlines the enduring tragedy of Sino-Indian relations. Deep distrust spawned over the decades by unresolved territorial disputes, intensifying competition for regional influence and fears of mutual encirclement through alliances with third parties have been reinforced by recent difficulties over trade and growing divergence on multilateral issues like nuclear order, terrorism, Asian security architecture and governance of the global commons. That list has just got a little longer with the addition of the BRI. It has been no secret that India was deeply wary of President Xi Jinping's Belt and Road Initiative — the collective name for Beijing's expansive plans to connect the Eurasian landmass and the Indian-Pacific littoral through trans-border road and rail networks, oil and gas pipelines, industrial corridors and inter-linked production chains backed by Chinese capital. Yet, Beijing was hoping that official India would participate at some level in the Belt and Road Forum. The quiet bilateral effort to facilitate India's presence at the Forum was apparently unsuccessful. Hours before Xi opened the Forum, India announced its decision not to join and explained its decision by laying out three sets of concerns. One was about the China-Pakistan Economic Corridor transgressing India's sovereignty in Pakistan occupied Kashmir. Second, while India's concern on PoK was well-known, Delhi surprised everyone by putting out a short but succinct critique of China's BRI by pointing to the lack of transparency, underlining the questionable economics, and highlighting the negative impact on communities and nations hosting BRI projects. Third, Delhi expressed its displeasure at the air of haughty unilateralism surrounding Xi's initiative. The Belt and Road Forum has adjourned on Monday, but the issues dividing India and China on the question of connectivity and regional integration will stay. India's long-term response to the BRI must be three-fold. One, Delhi must impart greater energy and urgency to its own internal and regional integration projects. For the gap between India's rhetoric on connectivity and

performance on the ground has been too wide. Two, Delhi must match its criticism of Chinese political and financial terms for connectivity projects with the demonstration of a different Indian model that is less hegemonic and more in sync with global norms. Three, Delhi must continue to press Beijing for a sustained dialogue on connectivity that will not only minimise the current contentions but also address the deeper questions on territorial sovereignty and regional rivalry that have been greatly reinforced by China's Belt and Road Initiative.

---



**Date: 17-05-17**

## **A bumper farm crisis**

### ***A free market in agriculture can be the best antidote to crisis facing our farmers***

Farmers in some States are regretting their abundant yields this year as the prices of agricultural commodities have crashed. Chilli farmers in Andhra Pradesh and Telangana, tomato growers in Karnataka, and *toor dal* cultivators in Maharashtra are at the centre of a severe crisis that has witnessed prices fall by more than half in a matter of just weeks. Some speculate that high commodity prices last year caused farmers to respond by boosting production, which in turn led to the present price crash. Whether it is the wholesale *mandis* where farmers sell their agricultural produce, or retail outlets where consumers buy them, price fluctuations are common. But whether such fluctuations can be explained as being due to mindless crop cultivation, as some speculate, is not as certain. For one, in the consumer market, commodity speculators usually dampen price fluctuations by managing supply according to consumer demand. For instance, when the supply of grains is abundant, speculators do not flood the market with all their stock but instead hoard the grains and sell them later when supply turns scarce. Thus, even if farmers engage in mindless grain production, speculators usually save the day for consumers by preventing steep rises and falls in grain prices.

#### ***Price fluctuations***

Second, in the wholesale market, speculators can save farmers from similar price fluctuations by paying a competitive price for their produce even when there is abundant supply. Grain traders, to return to our previous example, who want to hoard supply expecting higher grain prices in the future would be willing to pay a better price to farmers today. This comes not out of compassion for farmers, but purely out of competition with other grain traders. When farmers are free to sell their produce to any trader they want, it is traders paying the best price who get hold of it. Farmers can also expect a more predictable price for their produce each season, reflecting stable consumer prices, thus preventing mindless cultivation. Such competition though is precisely what is missing from the Indian agricultural scene where the supply chain is broken. Red tape, including limits on stocking agricultural products, has prevented the growth of a robust market for commodity speculation. The result is lack of investment in infrastructure like that of cold storage; about 40% of agricultural produce in India is wasted because of it. This, in turn, has led to price fluctuations that have affected both the farmer and the consumer. Wholesale agricultural prices are determined by trader cartels that block competitive bidding. This significantly reduces the price farmers can get for their products, while boosting the profits of some privileged traders. By some estimates, farmers receive only 20-25% of what the final consumer pays for his product. Thus, a free market in agriculture can be the best antidote to the crisis facing Indian farmers.

---



**Date: 17-05-17**

## **New base, new basket**

### ***The revised IIP shows India may have been overstating the industrial slowdown in its economy***

The Index of Industrial Production (IIP), a critical economic indicator, has of late become a source of concern — sometimes unmerited — over the credibility of India's statistics. The bellwether high-frequency indicator is a key input into making and assessing policies, particularly those pertaining to the manufacturing sector, inflation, interest rates and the flow of credit in the economy. But, in the past few years, the month-on-month IIP has shown excessively low, and even negative growth, which subsequently turned out to be out of sync with the actual manufacturing output growth measured through the Annual Survey of Industries (ASI). The survey for a financial year comes with a lag of about 24 months.

The theoretical aim of the IIP is to capture the direction and the trend of industrial production in the country, not the absolute value of industrial production. Its chief utility is as an early indicator of turning points in the economy. The IIP has been failing in serving this purpose. The reason being that it was measuring industrial output using baskets of production items and producing entities that had remained unchanged since 2004-05. The standard procedure followed was that a list of items was constructed in the base year and for each item the producing entities were identified. This structure was frozen. The index was constructed with the output figures received month over month from the baskets of items and entities fixed in the base year. If an entity shut down, its output fell to zero. But since the basket was frozen no new entity could be taken in place of the zero-output one. Over time, an item, say calculators, may fall out of use and more smartphones may be consumed. The IIP was not equipped to capture such changes in the economy.

### ***A more dynamic index***

Naturally, the IIP growth acquired a certain directional bias, which impaired its usefulness. To overcome the weaknesses, the IIP is being made more dynamic. First, the Central Statistics Office has updated its base year to 2011-12. The revision, the ninth such exercise since the original base year choice of 1937, is aimed at capturing the changes that have taken place in the industrial sector since 2004-05. New products have been included in the items basket, and those that have lost their relevance deleted. Renewable energy, for example, has been included in the electricity index. The expanded coverage — 809 items against 620 earlier, and a larger number of factories — is expected to make the IIP more representative. Second, instead of the periodic baskets revisions, a permanent standing arrangement is being put in place to make sure that the IIP remains representative.

An ongoing process is to be instituted for monitoring and mapping into the index the changes taking place in the economy under which a technical committee will continuously review the item basket, the reporting entities and the method of coverage. The improvements in the statistical apparatus have been carried out on the recommendations of a committee that the United Progressive Alliance (UPA) government had constituted in 2012 under the chairmanship of late Saumitra Chaudhuri, a member of the Economic Advisory Council of Prime Minister Manmohan Singh. Several measuring difficulties remain, though. The process of physically collecting data from entities to establish the collection system, where no statutorily-mandated system of regularly reporting production is in place, is still an institutional challenge.

### ***Righting the numbers***

The updated IIP offers new insights, the most important being that India may have been overstating the industrial slowdown in its economy. Whereas the average industrial output growth of the last five years (2011-

12 to 2016-17) in the old IIP is 1.38%, in the updated series it is 3.8%. On the manufacturing front, the news gets even better. The average five-year growth has improved to 4.04% against 0.94% in the old IIP. Although the average growth in two of the five years in which UPA-2 was in office outpaced that in the three years of the incumbent National Democratic Alliance (NDA) government's tenure. The performance — 4.2% versus 3.9% — challenges the narrative of the 'policy paralysis' characterising the dying years of Dr. Singh's stint. It also tests the efficacy so far of Prime Minister Narendra Modi's 'Make in India' initiative.

The bad news is that the output growth of the infrastructure and construction sector has slowed down from 5.7% in 2013-14 to 3.8% in 2016-17 despite the NDA government's sustained push to the infrastructure sector, including through substantial increases in targeted public spending, in the last three years. The updated IIP also shows a modest recovery in the capital goods sector, a barometer of the investment sentiment. From -3.6% in 2013-14, output growth in the sector improved to 1.9% in 2016-17.

The main driver of growth in the economy remains consumption. Consumer durables grew 6.2% and non-durables 9% in 2016-17. The Seventh Pay Commission award to Central government employees and pensioners last year seems to have spurred consumption. The monthly figures have not been released, but the spurt could also have been triggered by hectic use of demonetised cash for acquiring consumer durables and non-durables. Demonetisation's debilitating impact on manufacturing is visible in the updated monthly IIP for 2016-17. The average output growth for the seven months from April to October was 6.8%, and for the five months from November to March 2.28%. The IIP's coverage by design is limited to the organised sector. The disruption in the unorganised sector is expected to get measured in the ASI. The base years of all the major macroeconomic indicators, the Gross Domestic Product (GDP) and the Wholesale Price Index, are now aligned — 2011-12. The revised IIP will be plugged into the GDP series. The revised GDP estimates are scheduled to be released on May 31.

***Puja Mehra is a Delhi-based journalist***



***Date: 17-05-17***

## सिल्क रूट का जाल

चीन की सरकारी मीडिया को देखें तो वह "वन बेल्ट वन रोड" या ओबीओआर के लिए आयोजित सम्मेलन की सफलता पर फूले नहीं समा रहा है। वहीं दूसरी ओर भारत के उसमें शामिल न होने को लेकर छींटाकशी की जा रही है। वास्तव में यदि 29 देशों के प्रमुख और करीब 100 देशों और संगठनों के प्रतिनिधियों ने उस सम्मेलन में शिरकत किया तो तत्काल उसकी सफलता को दर्शाता है। दक्षिण एशिया में भारत और भूटान को छोड़कर सभी देशों ने भाग लिया। नेपाल ने तो बाजाबता वहां जाने के पहले इससे संबंधित समझौते पर हस्ताक्षर किया और ट्रांस बोर्डर रेलवे के विकास पर बातचीत कर रहा है। किंतु इन सबसे यह मान लेना की भारत का सम्मेलन से अलग रहना सही निर्णय नहीं था या वह अलग-थलग पड़ गया है उचित नहीं होगा। सबसे पहले हम यह याद रखें कि चीन पाकिस्तान आर्थिक गलियारा या सीपैक जो शिकियांग से ग्वादर बंदरगाह को जोड़ता है; वह पाक अधिकृत कश्मीर से गुजर रहा है। इसका भारत ने मुखर विरोध किया है, क्योंकि इसके द्वारा चीन प्रकारांतर से उस भाग पर पाकिस्तान के कब्जे को मान्यता दे रहा है। चीन को हमारे विरोध से कोई सरोकार नहीं है। जाहिर है, उसमें शामिल होने का मतलब होता चीन और पाकिस्तान के उस सहकार को मान्यता देना। इसलिए भारत के पास एक ही विकल्प था कि वह सम्मेलन से

अपने को दूर रखे। ओबीओआर परियोजना को चीन करीब 1000 वर्ष पूर्व कायम सिल्क रूट या रेशम मार्ग को पुनर्जीवित करना कह रहा है। उसकी इस प्रस्तावित ओबीओआर के दो रूट होंगे। पहला जमीनी रास्ता चीन को मध्य एशिया के जरिए यूरोप से जोड़ेगा, जिसे कभी सिल्क रोड कहा जाता था। दूसरा रूट समुद्र मार्ग से चीन को दक्षिण पूर्व एशिया और पूर्वी अफ्रीका होते हुए यूरोप से जोड़ेगा, जिसे नया मैरिटाइम सिल्क रोड कहा जा रहा है। इसे दक्षिण चीन सागर के जरिए इंडोनेशिया, बंगाल की खाड़ी, श्रीलंका, भारत, पाकिस्तान, ओमान के रास्ते इराक तक ले जाने की योजना है। पाक से साथ बन रहे सीपेक को इसी का हिस्सा माना जा सकता है। इसका उद्देश्य चीन का व्यापारिक एवं सामरिक विस्तार है। इस कारण सम्मेलन में भाग लेते हुए भी अनेक देश उसके प्रति सशंकित हैं और उस योजना का अंग बनना नहीं चाहते। इसलिए भारत के संदर्भ में जल्दबाजी में कोई निष्कर्ष न निकाला जाए।

---